बातचीत

समावेशी शिक्षाः विचार और अनुभव

डॉ. मदन मोहन झा से विश्वंभर की बातचीत

लेखक परिचय :

भारतीय प्रशासनिक सेवा में विभिन्न पदों पर कार्य करते हुए यूनीसेफ से सहायता प्राप्त 'बिहार शिक्षा परियोजना' के निदेशक एवं ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में विजिटिंग फेलो रहे। वर्तमान में बिहार के प्रमुख शिक्षा सचिव हैं। अपने पदभार के साथ ही शोध अध्ययनों में व्यस्त।

पुस्तक : प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली से 'समावेशी शिक्षा : दृष्टिकोण और प्रक्रियाएं' प्रकाशित।

सम्पर्क :

25 ए, हार्डिंग्स रोड, पटना (बिहार)

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा विमर्श में आठवें और नवें दशक में समावेशी शिक्षा का विचार प्रभावी हुआ। समावेशी शिक्षा के पैरोकारों का यह मानना रहा है कि विकलांग बच्चों की शिक्षा मुख्यधारा स्कूलों में, सामान्य बच्चों के साथ ही, होनी चाहिए। समावेशी शिक्षा का विचार 'विशेष शिक्षा' के विचार का विरोधी है। विशेष शिक्षा में यह माना जाता है कि विकलांग बच्चों या विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए अलग स्कूल होने चाहिएं। समावेशी शिक्षा के विचार में यह माना जाता है कि शिक्षा के उद्देश्य सभी बच्चों के लिए समान हैं और प्रत्येक बच्चे की शिक्षा की जरूरतें एक मायने में अलग-अलग होती हैं। फिर विकलांग या विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए अलग से विद्यालयों की आवश्यकता क्या है ? यदि सभी बच्चे-विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को अतिरिक्त सुविधाएं और सेवाएं प्रदान कर- मुख्यधारा के स्कूलों में पढ़ेंगे तो उनका सामाजीकरण भी बेहतर होगा।

भारत में समावेशी शिक्षा के विचार को सिर्फ विकलांग बच्चों की शिक्षा के संदर्भ में ही नहीं देखा जा सकता। डॉ. मदन मोहन झा का कहना है कि भारत में न सिर्फ विकलांग बच्चे बल्कि आदिवासी, अल्पसंख्यक, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और लड़कियां स्कूलों से (मुख्यधारा स्कूलों से भी) बाहर हैं। अतः भारत जैसे देश में तो इन सभी को मुख्यधारा के स्कूलों से जोड़ने की चुनौती भी समावेशी शिक्षा के साथ आती है। डॉ. झा समावेशी शिक्षा के विचार को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि समावेशी शिक्षा सिर्फ स्कूल केन्द्रित गतिविधि भर नहीं है बल्कि स्कूली गतिविधियों को बच्चों की रुचियों तथा शाला की चारदीवारी के पार बाहरी वातावरण और समुदाय से भी जोड़ने की जरूरत है। यदि हम स्कूलों में ऐसा कर पाएंगे तभी जाकर हम सही मायने में स्कूलों में समावेशी वातावरण रच पाएंगे।

प्रश्नः हम अपनी बात की शुरूआत यहीं से करते हैं कि समावेशी शिक्षा का विचार क्या है ? दूसरा, आपने अपनी पुस्तक में माइल्स को उद्धृत करते हुए कहा है कि, ''उपनिवेश काल में, मैकाले की शिक्षा पद्धति को लादे जाने से पहले, ऐसे सामुदायिक विद्यालय सचमुच में यहां पर थे।'' इस विचार का भारत के शिक्षा के इतिहास में क्या स्थान रहा है ?

उत्तरः देखिए, समावेशी शिक्षा का विचार क्या है ? इसका सीधा जवाब देना थोड़ा मुश्किल भरा काम है। क्योंकि यह सवाल अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी प्रश्नों और विवादों से घिरा हुआ है। लोग अपने-अपने नजरिए से इस प्रश्न को देखते हैं। लेकिन इस शब्द का प्रयोग, विशेषतः अंग्रेजी में इनक्लूजन या इनक्लूसिव एज्युकेशन,

विकलांगिता आन्दोलन (डिसऐबिलिटी मूवमेंट) से शुरू हुआ। सभी जगह विकलांग बच्चों की शिक्षा की पारंपरिक व्यवस्था सामान्य बच्चों से अलग-थलग रही। यह माना जाता रहा कि यह एक चिकित्सा से संबंधित मुद्दा है, एक चिकित्सा संबंधी समस्या है। कुछ दिन बाद लोग मानने लगे कि यह शारीरिक समस्या नहीं है यह तो मानसिक समस्या है, मनोवैज्ञानिक समस्या है। इसी मनोचिकित्सा के दृष्टिकोण से ऐसे बच्चों को अलग से पढ़ाने की व्यवस्था डेढ़-दो सौ सालों से हो रही है। ब्रिटेन या पाश्चात्य देशों में, लगभग जब से औपचारिक विद्यालय का इतिहास शुरू हुआ, उसी समय से इनकी शिक्षा की भी बात तो हुई लेकिन सामान्य बच्चों से अलग ही हुई। यह बात दृष्टिदोष से शुरू हुई। फिर बधिरों के बारे में भी बात शुरू हुई। लेकिन काफी दिनों के बाद लोगों ने यह महसूस किया कि इससे तो काम ठीक तरह से नहीं चल रहा है, मतलब इससे उनकी शिक्षा समुचित रूप में नहीं हो पा रही है। जो लोग मानते थे कि निर्योग्यता (विकलांगिता) के चिकित्सा संबंधी कारण हैं, उन पर भी विवाद उठने लगा। कुछ लोगों ने कहा कि इसके चिकित्सा संबंधी या शारीरिक कारण हो सकते हैं और इस लिहाज से इसको ठीक करने का सवाल है, पर बहुत मामलों में निर्योग्यता ठीक भी नहीं हो सकती। शिक्षा में इस विचार ने जोर पकड़ा कि एक तरह से तो सभी आदमी भिन्न-भिन्न होते हैं। कुछ आदमी थोड़े अधिक भिन्न हो जाते हैं। यदि हमें सब बच्चों को शिक्षा देनी है तो शिक्षा के दो मायने नहीं हो सकते। कुछ बच्चों के लिए शिक्षा को एक तरह की परिभाषित किया जाए और दूसरे बच्चों के लिए दूसरी तरह से। शिक्षा की व्यापक परिभाषा सभी बच्चों के लिए लगभग एक ही होगी, चाहे आप शिक्षा को किसी भी तरीके से देख लें। इस दृष्टिकोण से काफी लोगों ने सोचना शुरू किया, विशेषरूप से पाश्चात्य देशों में। हमने अपने देश का उदाहरण यहां इसलिए दिया कि हमारे यहां यद्यपि ये शब्द नहीं थे लेकिन कहीं न कहीं मिलजुल कर पढ़ने की बात शुरू से होती रही है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सबसे पहले औपचारिक रूप से इस शब्द का प्रयोग और सभी को मिलाकर पढ़ाने की बात 1994 में हुई। हम उसे सलामांका का स्टेटमेंट बोलते हैं। उसके बाद से ढेर सारा साहित्य, खासकर पाश्चात्य देशों में, इस विषय पर आया। उस साहित्य में और सालामांका स्टेटमेंट में भी कुछ हद तक एक सूची निर्योग्यता के बारे में बनी। उनका कहना था कि सिर्फ निर्योग्य ही अलग-थलग नहीं हैं। पाश्चात्य देशों में भी बहुत तरह के दूसरे समूह भी शिक्षा से अलग-थलग हैं, खासकर के जातीय अल्पसंख्यक। जब मैंने इस पर अध्ययन और शोध शुरू किया और अपने देश की पृष्ठभूमि में देखा कि हमारे यहां तो बहुत से समूह शिक्षा से अलग-थलग हैं-अनसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, आदिवासी, अल्पसंख्यक, गरीब, लड़कियां आदि। हमारे यहां तो शिक्षा बहिरावकारी (एक्सक्लूसिव) रही है, समावेश की बात तो हटाइए। हमारे यहां तो शिक्षा सुविधा संपन्न वर्ग का विशेषाधिकार या धरोहर रही है और यदि निजी स्कूलों को देखें तो वहां तो शिक्षा पूरी तरह से बहिरावकारी है। बच्चों की पारिवारिक पृष्ठभूमि से उनकी शिक्षा की परिभाषा निकलती है। तो मैं इस एजेण्डा को भारतीय संदर्भ से बाहर के संदर्भों में ले गया। यह निर्योग्यता से कहीं ज्यादा व्यापक मामला है। भारतीय संदर्भ में इसका समुचित उत्तर यह है कि जहां पाश्चात्य देशों में लोगों ने समावेशी शिक्षा के विचार को निर्योग्यता के खयाल से ही ध्यान में रखा वहीं भारतीय संदर्भ में समावेशी शिक्षा के विचार को निर्योग्यता के पार सभी तरह के वंचित वर्गों की पृष्ठभूमि में रखकर देखना होगा कि, यदि सब लोग मिलकर स्कूल और कक्षा में पढ़ें तो फिर बेहतर शिक्षा होगी। यानी विविधता को स्कूल और कक्षा में प्राथमिकता दी जाए तो वह शैक्षिक दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण संसाधन हो सकती है, न कि वह एक समस्या होगी बल्कि इस समस्या का निदान उससे निकल सकता है। यह मेरा दृष्टिकोण है।

प्रश्नः आपने कहा कि, पहले हमारे यहां मिलजुल कर पढ़ने की बात होती थी लेकिन हम देखते हैं कि हमारे यहां, पूरे भारत में और बिहार में भी, जाति व्यवस्था का प्रभुत्व रहा है और इसी वजह से अनुसूचित जातियों-जनजातियों और लड़कियों को भी पढ़ने के अवसर नहीं मिले। तो क्या यह कहना उचित होगा कि हमारे यहां पहले मिलजुल कर पढ़ने की व्यवस्था रही है ?

उत्तरः मेरे कहने का यह मतलब था कि हमारी शिक्षा काफी हद तक समुदाय के साथ थी। हालांकि यह बिन्दु ध्यान में रखने लायक है कि वर्ण व्यवस्था के अन्दर, उदाहरण के लिए संस्कृत की शिक्षा में ब्राह्मणों का आधिपत्य रहा, लेकिन जो देशज स्कूल थे जिनका जिक्र एडम्स की रिपोर्ट वगैरह में है; उसमें इसका जिक्र है। वे शालाएं किसी हद तक समुदाय की जरूरतों के हिसाब से चलती थीं। इसके बारे में कोई बहुत बड़ा दावा तो नहीं किया जा सकता है लेकिन शिक्षा की बुनियाद में अलगाव नहीं था। शिक्षा में अलगाव की शुरूआत को लगभग अंग्रेजी शिक्षा से, कि अंग्रेजी शिक्षा दी जाए और अंग्रेजी शिक्षा सब को नहीं दी जा रही थी, माना जा सकता है और उसको हम लोग अभी तक कायम रखे हुए हैं। लेकिन एक अच्छी बात यह है कि कम से कम अभी भी हमारी शिक्षा नीतियों में निर्योग्यता के लिए अलग से कोई परिभाषा और रणनीति नहीं है। आज की स्थिति में यह पहले से मान्य व्यवस्था की वजह से हो सकता है। इसका मतलब यह नहीं है कि सभी निर्योग्य बच्चे स्कूल में हैं। पाश्चात्य देशों में उन्होंने निर्योग्य बच्चों की शिक्षा को नीतिगत रूप से अलग किया लेकिन हमारे यहां शिक्षा नीतियों में निर्योग्य बच्चों की शिक्षा को अलग करके नहीं देखा गया, यह एक तरीके

से हमारी ताकत है। कई लोगों ने इस बारे में लिखा है। अब हम उसको परिभाषित करके अगर इल्ले, बिल्ले-चिल्ले स्कूल निकाल भी लें और कहें कि हमारे यहां निर्योग्य बच्चों के अलग से स्कूल थे तो इसका कोई मतलब नहीं है। अब हम 'सभी के लिए शिक्षा' या शिक्षा के मूल अधिकार की बात कर रहे हैं। लेकिन कम से कम हमने अभी तक यह नहीं कहा है कि हम निर्योग्य बच्चों के लिए अलग से शिक्षा की बात करेंगे। इस देश में कुछ लोगों की यह भी सोच है और उसके लिए लॉबी भी काम करती है कि निर्योग्य बच्चों के लिए शिक्षा की व्यवस्था अलग से की जाए। हमारा यह सिद्धान्त है कि बहुत से देश इसको अलग करके शुरू करना चाहते हैं तो हम हमारे देश में सभी के लिए एक ही व्यवस्था क्यों नहीं कर सकते ?

प्रश्नः यदि इसी सवाल को आगे बढ़ाएं तो हमारे यहां समावेशी शिक्षा को लेकर शिक्षा नीतियां और शिक्षा योजनाएं क्या कहती हैं?

उत्तरः देखिए, अब समावेशी शिक्षा तो एक शब्द हो गया है। यह तो एक ठप्पा हो गया है। लोग समावेशी शिक्षा की बात तो करते हैं। अभी जहां-तहां लोगों ने शिक्षा नीतियों में इस शब्द का इस्तेमाल शुरू तो कर दिया है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 में इस विचार का साहित्य की दृष्टि से थोड़ा विकास हुआ है। लेकिन यदि आप शिक्षा मंत्रालय के नीतिगत दस्तावेज देखें। उदाहरण के लिए, सर्व शिक्षा अभियान के दस्तावेज देखें तो उनमें समावेशी शिक्षा के नाम पर 'विशेष शिक्षा' को स्थापित कर रहे हैं। मतलब यदि बच्चे मुख्यधारा स्कूल में आ गए तो समझते हैं कि यही समावेशी शिक्षा है। जबकि वास्तविक रूप से यह होता है कि विशेष शिक्षा को ही वे मान्य बना रहे हैं। इस व्यवस्था में सभी मामलों में बच्चे अलग-थलग रहते हैं। कहीं-कहीं तो भौतिक रूप से भी अलग-थलग रहते हैं। कहीं-कहीं कक्षा में लाने के बाद भी बच्चे अपने आपको अलग-थलग महसूस करते हैं। हमने जो नया शोध किया है उसमें इसके बहुत स्पष्ट उदाहरण दिए हैं। लेकिन वे समावेशी शिक्षा शब्द का इस्तेमाल करके कह रहे हैं कि हम समावेशी शिक्षा करते हैं। समावेशी शिक्षा में हमारे हिसाब से वास्तविक रूप में स्कूलों में इन बच्चों की मौजूदगी महत्त्वपूर्ण नहीं है। समावेशी शिक्षा के प्रचलित विचार में अवधारणा के स्तर पर यह माना जाता है कि सभी बच्चों की शिक्षा की अपेक्षाएं प्रायः एक तरह की हैं। अब अगर वे अपेक्षाएं कुछ हद तक अलग तरह से दी जा सकती हैं तो उसमें हमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। वे उस बच्चे की आवश्यकता, उसकी विशिष्ट जरूरतों को ध्यान में रखकर दी जा सकती हैं। यह सही है कि बच्चे पढ़ना चाहते हैं और दूसरी बात यह है, जिसे कहीं न कहीं हमारा शोध भी कहता है कि, जब बच्चे मिलजुल कर पढ़ते हैं तो सभी की शिक्षा बेहतर होती है और इसके शोध आधारित प्रमाण भी हैं। इससे समग्रता में बेहतरी होती है। एकरूपता लिए कक्षाएं परम्परागत शालाओं की विशेषता है। लेकिन हम देखते हैं कि हमारा समाज ही विविधता लिए हुए है तो समाज की विविधता का प्रतिबिंबन शाला में क्यों न हो ! अगर हम यह मानकर चलें कि सभी बच्चे अलग-अलग हैं, लेकिन उन्हें एक साथ मिलकर पढ़ना चाहिए क्योंकि उनको एक साथ रहना है तो ये शिक्षा एवं शिक्षणशास्त्र की चुनौती है कि हम किस तरह से इस समस्या से निजात पाएं। एक तरह के बच्चों को, एक उम्र के बच्चों को पढ़ाने की एक रणनीति हो सकती है जो अभी तक हो रही है। लेकिन तरह-तरह के बच्चों को मिलाकर पढ़ाने की दूसरी रणनीति होगी और वह रणनीति निकालनी चाहिए। तो अवधारणा के स्तर पर यह सहमति बने कि मिलजुल कर पढ़ना बेहतर है, विविधतापूर्ण समूह बेहतर हैं, कक्षा में विविधता पर ध्यान दिया जाना बेहतर है तब विस्तार से शिक्षा, शिक्षणशास्त्र और आधारभूत सुविधाओं की जरूरत को पूरा करने में आसानी होगी।

प्रश्नः आपने अपनी किताब-'समावेशी शिक्षा-दृष्टिकोण एवं प्रक्रियाएं'- में कहा है कि, ''समावेशी शिक्षा का मतलब सभी बच्चों की भागीदारी और सिर्फ स्कूल के अन्दर ही नहीं बल्कि स्कूल के बाहर के क्रियाकलापों से भी बच्चों को जोड़ना है।'' ये बात आजकल काफी की जा रही है। लेकिन क्या इसका मतलब यह है कि 'मान लीजिए' कोई एक बच्चा है जो सुन नहीं पाता है, देख नहीं पाता है या किसी भी प्रकार से निर्योग्य है या मानसिक रूप से चुनौतिपूर्ण है तो क्या वे सभी सामान्य बच्चों के साथ एक साथ पढ़ें ?

उत्तरः एक शाला में आ सकते हैं, पढ़ सकते हैं। यह बहुत हद तक उस बच्चे पर निर्भर करता है, स्कूल पर निर्भर करता है। अगर हम बाहर से बैठकर निर्धारित करें तो गलती वहीं पर है। उदाहरण के लिए, यदि कुछ बच्चों को सुनने में समस्या है तो वे सुनने का उपकरण लगाते हैं। इसी तरह से सामान्यरूप से कोई भी पूरी तरह से अंधेपन से ग्रस्त नहीं रहता है। यह कहा जा सकता है कि सामान्यरूप से पूर्णतः कोई भी व्यक्ति निर्योग्य नहीं होता। दूसरी बात यह है कि सारी पढ़ाई सुनकर या देखकर ही नहीं होती। लेकिन यदि कोई अंधा है तो वह सुन सकता है। यदि कोई सुन नहीं सकता है तो देखकर सीख सकता है। आजकल तो समस्याओं के समाधान के लिए भी बहुत-सी तकनीक एक हद तक आ गई हैं। इन तकनीकों के इस्तेमाल से बच्चों की मदद की जा सकती है। यदि मदद न भी की जा सके तो, आपने कहा कि मानसिक समस्या है, जैसे बहुत बच्चों में वाक् विकार होता है, बहुत से बच्चों को मंद गति से सीखने वाला कहा जाता है, बहुत से बच्चों के लिए ध्यान एकाग्र करने में बाधा होती है। ये सभी समस्याएं मन से संबंधित हैं। मैं तीन उदाहरण दे रहा हूं। आप बच्चे को वाक् विकारयुक्त तब कहते हैं जब पढ़ाने में छपी हुई सामग्री पर आपका अत्यधिक जोर रहता है।

अगर आप छपी समग्री से अत्यधिक जोर को हटा दें तो बच्चे को वाक् विकारयुक्त नहीं कहा जाएगा। यहां कहने का तात्पर्य यह है कि यदि हम अपने शिक्षाक्रम और शिक्षणशास्त्र को विविधताओं से युक्त कर दें तो यह समस्या खत्म हो जाएगी। किसी बच्चे को मंद गति से सीखने वाला इसलिए कहा जाता है कि आपके पढ़ाने की एक गति है और जो बच्चा उस गति के अनुरूप नहीं चल पा रहा है, तो उसे मंद गति से सीखने वाला बच्चा कह दिया जाता है। यदि आप पढ़ाने की गति को बच्चे के सीखने के अनुरूप कर दें तो वह बच्चा मंद गति से सीखने वाला नहीं रहेगा। आप उसको अधिक समय दीजिए। कोई जरूरी नहीं है कि एक साल में ही सारे बच्चे एक कक्षा को पार करें। कोई बच्चा ज्यादा समय भी लगा सकता है। ध्यान एकाग्र नहीं कर पाने की समस्या भी इसी तरह की है। यदि कोई बच्चा 45 मिनट तक कक्षा में नहीं बैठ सकता है तो आप उसको आधा घण्टे ही कक्षा में बैठने दीजिए। इस प्रक्रिया से धीरे-धीरे उसकी स्थिति में सुधार होगा। यदि शाला और कक्षा के वातावरण में इस तरह का लचीलापन रहेगा तो शाला और पढ़ाने की जो पारम्परिक व्यवस्था है, उसे तोड़ने में विशेष दिक्कत नहीं होनी चाहिए।

प्रश्नः लेकिन हमारे सामने एक चुनौती यह भी है, जिसे आपने कहा भी है कि, ''समावेशी शिक्षा को लेकर प्रशिक्षणों में जो काम किया जाता है उसमें उन्हें अंतिम दिनों में कुछ कागज पढ़ने के लिए पकड़ा दिए जाते हैं।'' यदि समावेशी शिक्षा के विचार को हमें सही मायने में लागू करना है तो हमें शिक्षक प्रशिक्षण में क्या करना होगा ?

उत्तरः एक उदाहरण के माध्यम से आपको बताता हूं। जब हमने यहां पर शिक्षक प्रशिक्षण का कार्य शुरू किया तो एक प्रयोग किया। उनमें शिक्षकों के साथ दो दिन तक बच्चों की पढ़ाई और किताबों की बात हमने की ही नहीं। हम सिर्फ यह सवाल उठाते थे कि आप स्कूल में किस तरह के बच्चों की अपेक्षा कर रहे हैं जो आपके स्कूलों में आएंगे और अगर वे नहीं आ रहा है तो हमें क्या करना चाहिए ? तो जवाब आता था कि हम अपेक्षा रखते हैं कि अनुसूचित जाति, गरीबों, अल्पसंख्यकों के बच्चे और लड़कियां हमारे स्कूलों में आएंगी। फिर हमारा सवाल होता था कि इन बच्चों को स्कूल में लाने के क्या प्रयास करने चाहिएं ? इस विषय पर हम लोग घंटों चर्चा किया करते थे। कभी किसी के दिमाग में यह नहीं आता था कि निर्योग्य बच्चे भी हैं जो स्कूलों में नहीं आ पा रहे हैं। यानी हमारे दिमाग में वे बच्चे थे ही नहीं। तो अगर हम यह मानकर चलें कि हमारे समाज में निर्योग्य बच्चे भी हैं और स्कूल में आना उनका भी अधिकार है तो उस समय से हमारी शुरूआत ऐसे शिक्षक प्रशिक्षणों की हो जाएगी जिसमें निर्योग्य बच्चों को पढ़ाना एक पुछल्ला नहीं रहेगा बल्कि वह उसका आंतरिक हिस्सा बन जाएगा। यदि यह कर पाए तो हम आधी लड़ाई जीत लेंगे। यदि सभी बच्चों के शाला में आने के बाद यह विचार आए कि, नहीं साहब; इस तरह के बच्चों को अलग से पढ़ाना चाहिए। शायद वे अलग पढ़ते हुए बेहतर महसूस करेंगे या उनको ये-ये सुविधाएं देनी चाहिएं, तब तो यह सोचना अच्छी बात होगी लेकिन जब शुरूआत ही यह मानकर की जाती है कि निर्योग्य बच्चे तो अलग हैं और उनकी पढ़ाई की व्यवस्था अलग से होनी चाहिए तो समस्या और बढ़ जाती है।

प्रश्नः सर्व शिक्षा अभियान में करीब तीन साल पहले पहली बार गांव-ढाणियों में निर्योग्य बच्चों की पहचान का काम शुरू हुआ था कि गांव के कितने बच्चे निर्योग्य हैं। इससे पहले निर्योग्य बच्चों के बारे में सोचा ही नहीं गया। क्या आपको लगता है कि सर्व शिक्षा अभियान में जो 'सर्व' है यह उस समावेश को परिभाषित करता है जिसकी बात आप कर रहे हैं ?

उत्तरः नहीं करता है। बहुत स्पष्ट रूप से मैंने इस बात को कहा है। क्योंकि उन्होंने इस शब्द का इस्तेमाल तो किया है लेकिन वे इन बच्चों के साथ पूरी तरह से अलग-थलग व्यवहार करते हैं। इस कार्यक्रम में इन बच्चों को भौतिक रूप से एक साथ लाने की कोशिश करते हैं। निर्योग्यता को लेकर मैं आंकड़ों में विश्वास नहीं करता हूं। पीडब्ल्यूडी एक्ट में निर्योग्यता की जो परिभाषा की गई है वह शिक्षा की दृष्टि से बहुत ही गलत है। जिन्हें इस एक्ट में निर्योग्य कहा गया है वे शैक्षिक मायने में निर्योग्य नहीं हैं। आप बहुत मामले में हमको निर्योग्य कह सकते हैं लेकिन बहुत से लोग यह नहीं मानेंगे। यदि आंकड़ों की बात करें तो भारत की जनगणना और अन्य सर्वे के हिसाब से 2 प्रतिशत बच्चे ही निर्योग्य हैं।

प्रश्नः क्या ये आंकड़े सही हैं ?

उत्तरः नहीं, यह आंकड़ा भारत की 2001 की जनगणना से निकाला गया है। बहुत बड़ी लॉबी ने जब इस मुद्दे पर काम किया तो जनगणना में एक सवाल इसके बारे में रखा गया। इससे लगभग 2 प्रतिशत बच्चों की पहचान हुई। हालांकि इस सवाल का बहुत ही मजेदार नतीजा निकलकर आया। राष्ट्रीय प्रतिदर्शी सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) का सर्वे भी लगभग यही बताता है। स्वयंसेवी संगठन हैं, जो इस क्षेत्र में काम कर रहे हैं उनका कहना है कि इनकी संख्या लगभग 10 प्रतिशत है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इसे 5 प्रतिशत माना जाता है। भारत की जनगणना में इसके बारे में जो सवाल रखा, उसके लिए निर्योग्यता को कुछ ऐसे परिभाषित किया, यह सुनने में आया है, अभी मैंने इसकी जांच नहीं की है; जैसे आंख के बारे में निर्योग्यता की परिभाषा कुछ इस प्रकार थी कि जिसकी दृष्टि बाधित हो वे निर्योग्य हैं। तो जनगणना करने वाले लोगों ने सर्वे के

दौरान पूछा कि आपकी आंख से देखने में दिक्कत तो नहीं है ? तो चश्मा लगाने वालों ने कहा कि दिक्कत है। आमतौर पर माना जाता है कि हड्डी से जुड़ी निर्योग्यता सबसे अधिक है। लेकिन भारत की जनगणना में आंख की निर्योग्यता सबसे अधिक आई है। यदि आप इस तरह से निर्योग्यता को देखेंगे तो वे सभी निर्योग्य हो जाएंगे जिनको थोड़ी-सी भी दिक्कत है। लेकिन यदि आप इसको दूसरी तरह से देखें तो गंभीर निर्योग्यता के अलावा बाकी सब आसानी से पढ़ सकते हैं। जनगणना कहती है कि 85 प्रतिशत लोग गंभीर रूप से निर्योग्य हैं। 100 प्रतिशत अंधेपन से पीड़ित तो गंभीर रूप से निर्योग्यता में आ जाएगा लेकिन विशेषज्ञों का मानना है कि 100 प्रतिशत आंख से निर्योग्य व्यक्ति आसानी से पढ़ सकता है और स्कूल में उनका समावेशन सबसे आसान है। सुनने में जिनको दिक्कत है उनको थोड़ी समस्या होती है, पता नहीं इसके कारण तो क्या हैं। लोग चाहते हैं कि सुनने में दिक्कत वालों को थोड़ा अलग से पढ़ाया जाए। आंख से निर्योग्य कभी भी अलग से पढ़ना नहीं चाहते। आंख से निर्योग्य अनेक अच्छे-अच्छे अध्येता मुख्यधारा के स्कूलों और कॉलेजों में पढ़कर आगे बढ़े हैं। वे अंधे लोगों के लिए संचालित स्कूलों में नहीं पढ़े हैं। निर्योग्यताओं की इन परिभाषाओं से यदि निर्योग्यों के लिए कुछ अलग से सुविधाएं देनी हैं तो वह तो ठीक है। यदि आप इन्हीं परिभाषाओं के माध्यम से कुछ के लिए कुछ सुविधाएं देना चाहते हैं या किसी अन्य कारण से छांटना हैं तो यह ठीक नहीं है। जब आप 'सभी के लिए शिक्षा' की बात करते हैं तो मेरा यह कहना है, खासकर 14 साल के लिए, तब तो ये मुद्दा है ही नहीं कि कौन कितना निर्योग्य है। चाहे फिर कोई 100 प्रतिशत या दस प्रतिशत निर्योग्य है, आपको तो 14 साल तक सभी को अनिवार्य शिक्षा देनी ही है। इसलिए शिक्षा में तो हमारे लिए इस परिभाषा का कोई मतलब है ही नहीं। ऐसी स्थितियों में हमारे लिए चुनौती है कि हम ऐसे बच्चों को शिक्षा कैसे दें ?

प्रश्नः निर्योग्य व्यक्तियों का सबसे पहला सर्वे 1944 में हुआ था। इतना लम्बा समय निकलने के बाद भी अभी तक सभी की शिक्षा की व्यवस्था क्यों नहीं कर पाए हैं ? क्यों समावेशी शिक्षा की समुचित नीतियां नहीं बन पाईं?

उत्तरः हां, सबसे पहला सर्वे 1944 में ब्रिटिश समय में सार्जेंट ने किया था। ये सार्जेंट रिपोर्ट अपने समय के हिसाब से काफी हद तक प्रगतिशील थी। उसने कहा था कि पूरी दुनिया में सभी निर्योग्य बच्चों की शिक्षा पारंपरिक रूप से स्वास्थ्य और जनकल्याण की गतिविधि के रूप में रही है। 1944 में उन्होंने कहा था कि सारे बच्चों को जहां तक संभव हो मुख्यधारा के स्कूलों में ले आइए। उन्होंने कहा कि सभी बच्चों को सुविधाएं देनी हैं तो बजट का 10 प्रतिशत इसके लिए दीजिए, जो कि हमारे हिसाब से काफी प्रगतिशील सुझाव माना जाएगा। कोठारी कमीशन में उस तरह की नीति को जारी नहीं रखा गया। उन्होंने कहा सब बच्चों को देने से प्रभाव अच्छा नहीं होगा। बहुत सारी शर्तें उसमें लगा दीं। उसके बाद की नीतियों में इसको 'विशेष शिक्षा' के तौर देखा जाता रहा है। लेकिन यह भी है कि आज भी 'विशेष शिक्षा' मानव संसाधन विकास मंत्रालय का हिस्सा नहीं है। वह समाज कल्याण विभाग के अधीन है। इसका मतलब जो शिक्षा उनके लिए है वह 'कल्याण' के लिए है। और भी मजेदार ये है कि जो भारतीय पुनर्वास परिषद ('रिहेविलिटेशन कांसिल ऑफ इंडिया) एक्ट : 1992 बना है उसमें कहा है कि इन बच्चों की शिक्षा पुनर्वास है। माने बाकी बच्चों की शिक्षा तो शिक्षा है और इन बच्चों की शिक्षा पुनर्वास है। मैं इस बात से इंकार नहीं करता हूं कि इनके लिए पुनर्वास की कुछ विशेष जरूरतें हैं। लेकिन शिक्षा में इन बच्चों के लिए सभी बच्चों से अलग वर्ग बनाने की क्या जरूरत है ? तो ये नीतियों की समस्या है जिससे इसे कार्यरूप में भी उतारने में दिक्कत हो रही है।

प्रश्नः आपने नीतियों की बात तो की है लेकिन शारीरिक या मानसिक रूप से निर्योग्य बच्चों के संदर्भ में यह देखने में आता है कि उनके प्रति हमारे समाज में भी दया का भाव, बेचारे का भाव, देखने को मिलता है। इस भाव से ही गैर-बराबरी की भावना इन बच्चों के प्रति आती है। तो क्या समाज में व्याप्त ये भाव भी उनकी शिक्षा में बाधा उत्पन्न नहीं करता?

उत्तरः बिल्कुल सही कहा आपने। देखिए, इसकी तीन अवस्थाएं हैं। पहली है परोपकार की अवस्था जिसमें दया और कभी-कभी उपेक्षा की भावना उत्पन्न होती है और इसी से इन बच्चों के प्रति अलगाव की भावना विकसित होती है। इसी से इन बच्चों के लिए विशेषीकृत शिक्षा की बात की जाती है और इसमें यह भावना होती है कि इसको ठीक करो। जब तक ये ठीक नहीं होते तब तक ये हमारे साथ आ ही नहीं सकते। दूसरा चरण मानवाधिकार आंदोलन से आया है। लोग कहते हैं कि जो स्थिति है वह तो है लेकिन शिक्षा पाना उनका अधिकार है। अतः अधिकार को पूरा करने के लिए जो कमी है उसको पूरा करो यानी भरपाई करो। दूसरा चरण एकीकरण का आया। इसमें माना जाता है कि हमारा स्कूल जैसा है वैसा ही रहेगा, शिक्षक जैसे हैं वैसे ही रहेंगे। उन बच्चों को आकर इसमें फिट होना है। यानी एक ही सांचे में सभी को ढालना। यह भरपाई वाली दृष्टि है, मानवाधिकार आंदोलन कभी-कभी अलग-थलग व्यवस्था की पैरवी भी करता है। अंधेपन से जुड़े मानवाधिकार आन्दोलन वाले कहते हैं कि शिक्षा लेना एक अधिकार है। अब बच्चा कहां शिक्षा ले रहा है, इससे क्या मतलब है ? अगर 'विशेष स्कूल' में बढ़िया शिक्षा हो रही है तो हम विशेष स्कूल में ही शिक्षा देंगे। लेकिन तीसरा चरण समावेशन का है। जो कहता है कि जो बच्चा जैसा है,

उसको स्वीकार कीजिए। वह कहता है कि विविधता है और इस विविधता को मानिए। उसको स्वीकार करने का मतलब यह नहीं है कि उसकी जो जरूरतें हैं मत दीजिए। सामान्यरूप से भी आपको सुविधाएं तो देनी हैं। उसमें फिर ये विवाद खत्म हो जाता है कि हमको भरपाई करनी है या संशोधन करना है ? उसे स्वीकार करके आप अपनी शिक्षण विधियों में बदलाव करिए। फिर उसमें भाषा भी बदलने लगती है। हमने इसके उदाहरण भी दिए हैं। समावेशी शिक्षा में बहु-प्रतिभा (मल्टीपल इंटेलीजेंस) फिर मिश्रित कक्षा कक्ष आदि समावेशी शिक्षा के दृष्टिकोण में आती हैं।

प्रश्नः समाज के स्तर पर इसके लिए क्या किए जाने की जरूरत है ? जिससे इनके प्रति गैर-बराबरी की भावना आदि न रहे।

उत्तरः देखिए, यह थोड़ा लम्बा विवाद है कि पहले समाज बदलेगा कि पहले शिक्षा। बेचारे या कमतर वाली भावना तो कम हो रही है। क्योंकि इनका जो आंदोलन है वह काफी मजबूत है जिसमें कि ये अपने अधिकारों की बात कर रहे हैं। लेकिन यह सही है कि परिवार या समाज के स्तर पर तो शुरूआत दया या बेचारे की इसी भावना से होती है। लेकिन यह जरूरी नहीं है कि शिक्षा में भी हम इस बात को लाएं ही क्योंकि समाज में तो जो है वह है ही। बेहतर शिक्षा का मतलब यह है कि हम उन पर दया नहीं दिखाएं बल्कि उनकी शिक्षा की जरूरत को पूरा करें। यदि हम यह कर पाते हैं तो हमारा काम इससे चल जाएगा।

प्रश्नः आपने कहा है कि स्कूल में सभी वर्गों के बच्चे, लड़कियां आएं और उससे आगे आपने यह कहा है कि, समावेशी शिक्षा ''एक बच्चे के आगे अधिगम और भागीदारी संबधी सभी बाधाओं को दूर करे और फिर बच्चों की स्थिति मानसिक या शारीरिक रूप से जो भी हो। उनको स्कूल में लाया जाए और उनकी भागीदारी को भी सुनिश्चित किया जाए और शैक्षणिक गतिविधियों को समुदाय से जोड़ा जाए।'' लेकिन अभी तो हमारे सारे शैक्षिक कार्यक्रमों, चाहे फिर वह सर्व शिक्षा अभियान हो, के लिए बड़ी चुनौती सभी बच्चों को स्कूल से जोड़ने की है। ऐसे में बच्चों की भागीदारी और शैक्षणिक गतिविधियों को समुदाय से जोड़ना तो बहुत दूर की बात है।

उत्तरः देखिए, यह हमारा व्यक्तिगत विचार है। शिक्षा के जो भी कार्यक्रम हैं, चाहे सर्व शिक्षा अभियान हो, वे केन्द्र द्वारा संचालित योजनाएं हैं। मेरी उनसे कोई शिकायत नहीं है। वे इसके लिए पैसा देते हैं। लेकिन इस बात से आप सहमत होंगे कि ये कार्यक्रम व्यवस्थागत सुधार के कार्यक्रम नहीं हैं। इस तरह की योजनाओं से यह उम्मीद करना ज्यादती होगी। यह तो तभी संभव होगा जब नीतिगत रूप से हम यह समझें कि जो असामनता है वह अन्तर्निहित है। बहुत से नीति निर्माता और अच्छे-अच्छे लोग यह मानते हैं कि यह असमानता रहनी चाहिए। यदि यही मान्यता है तो फिर समावेशी शिक्षा की बात ही नहीं करनी चाहिए। मैं अभी हाल का ही उदाहरण देता हूं, अभी सभी जगह अंग्रेजी शिक्षा की बात शुरू हो रही है कि बच्चों को पहली कक्षा से अंग्रेजी की शिक्षा देने से समावेशी शिक्षा होगी। जबकि यह बात बिल्कुल ही समावेशी शिक्षा के विचार के विरुद्ध है। समावेशी शिक्षा का मतलब यह नहीं है कि आप सबों को एक रंग से ढाल दीजिए। समावेशी शिक्षा का मतलब है जो जैसा है आप उसको वैसे ही प्रफुल्लित होने दीजिए। समावेशी शिक्षा के विचार को एक रूपक से कहा जाए तो समावेशी शिक्षा एक तरह की फुलवारी है। जिसमें सभी तरह के फूलों को प्रस्फुटित होने का मौका मिलता है; यदि उसमें एक तरह के फूल ही नहीं लगाएं या किसी तरह का भेदभाव न करें तो। एक अच्छी फुलवारी का गुण यह है कि उसमें तरह-तरह के पौधे रहेंगे। आप उसको खाद दीजिए, सूरज की रोशनी दीजिए, पानी दीजिए। स्कूल को वैसा ही बनना चाहिए। समावेशी शिक्षा का मतलब मुख्यधारा में मिलना नहीं है। मुख्यधारा में मिलकर तो सभी एक हो जाते हैं और अपनी पहचान खो देते हैं। हमारे देश की मजबूती इसकी विविधता और बहु-सांस्कृतिकता है, विभिन्न भाषाएं बोलना और सीखना। कभी भी कोई भी देश दूसरे देश की भाषा पढ़कर विकसित नहीं हुआ है। कहने का मतलब है कि यदि हम यह मानकर चल रहे हैं कि समानता अंग्रेजी पढ़ाने से आएगी या समानता सर्व शिक्षा अभियान से आएगी, तो यह एक गलत मान्यता है। यदि समानता आएगी तो वह आएगी 'समान शिक्षा प्रणाली' से, 'पड़ोसी स्कूल' की धारणा से और सही मायने में समावेशी शिक्षा से। हम कहते हैं कि जो बच्चे जैसे हैं उनको स्कूल में आने दो और फिर उनके हिसाब से शिक्षणशास्त्र को विकसित करने की जरूरत है।

प्रश्न : क्या 'समान स्कूल प्रणाली' और 'समावेशी शिक्षा' एक दूसरे के पर्याय हैं ? समान स्कूल प्रणाली और समावेशी शिक्षा में क्या संबंध है ? आपने अपनी किताब में कहा है कि समान स्कूल प्रणाली समावेशी शिक्षा की उदयीमान धारणा के करीब है।

उत्तरः मैं कोई बहुत बड़ा शिक्षाशास्त्री या पेशेवर शिक्षाशास्त्री तो हूं नहीं और न ही मैंने शिक्षा का इतिहास पढ़ा है। समान स्कूल प्रणाली हमारे लिए एक आती जाती शब्दावली थी। जब मैं इंग्लैण्ड में समावेशी शिक्षा पर पुस्तकालय शोध कर रहा था जैसा मैंने आपको बताया कि वहां पर समावेशी शिक्षा का विचार कहीं न कहीं निर्योग्यता के आसपास ही घूमता रहता है। चूंकि काफी बड़ी संख्या में और बच्चे वहां आ गए हैं। उनका व्यापक शैक्षिक आंदोलन चला या अमेरिका में पड़ोसी स्कूल का आन्दोलन चला या जातीय अल्पसंख्यक या कामकाजी वर्ग के बच्चों के सवाल उठे। वहां पर निजी विद्यालयों का बहुत कम बोलबाला है लेकिन वहां भी विशेष

विद्यालय चल रहे हैं। विशेष विद्यालय और समान स्कूल प्रणाली का विवाद वहां पर बड़ी जोरों से चल रहा है। जब मैंने अपने देश से इस बहस को जोड़ने की कोशिश की और जैसा कि मैंने पहले बताया कि हमारे यहां तो बड़ी भारी संख्या में बच्चे स्कूल से अलग हैं। तो मैंने हमारी शिक्षा नीतियों का अध्ययन करना शुरू किया और यह देखना चाहा कि क्या इन दस्तावेजों में कहीं ऐसा उपाय है कि जहां पर हम कह सकते हैं कि नहीं साहब यहां भी बच्चों को एक साथ मिलजुल कर पढ़ने का अधिकार है। तब मैंने देखा कि कोठारी कमीशन ने, बड़े स्पष्ट शब्दों में, पड़ोसी स्कूल के विचार को परिभाषित किया है और उसकी भाषा को देखें तो वहां काफी दृढ़ भाषा में यह विचार रखा गया है। हालांकि वहां इस विचार में कुछ कमी है। उन्होंने एक विचार के रूप में उसको नहीं लिया था। समान स्कूल प्रणाली को एक प्रबंधकीय नजरिए के रूप में लिया था। लेकिन कोठारी कमीशन की रिपोर्ट में एक जगह कहा है कि हरेक बच्चे की अच्छी शिक्षा तब होगी जब कि समुदाय के सभी बच्चे चाहे वे गरीब हों, अमीर हों, किसी भी जाति के हों, मिलजुल कर पढ़ें। और दूसरी बहुत महत्त्वपूर्ण बात यह कही है कि तभी विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग के लोग उस स्कूल को ठीक करने में दिलचस्पी लेंगे। तब मुझे लगा कि समावेशी शिक्षा के विचार की ओर इशारा किया गया है भले ही वहां समावेशी शिक्षा शब्द का इस्तेमाल नहीं किया गया है। समान स्कूल प्रणाली के माध्यम से स्कूल की श्रेणीबद्धता, जाति व्यवस्था या जो स्कूल पहले से ही विभिन्न आधारों पर बच्चों को परिभाषित कर देता है, समान स्कूल प्रणाली उसको खत्म करती है और यह नीति दस्तावेज सभी तरह के बच्चों के स्कूल में एक साथ आने को प्रस्तावित करता है। मुझे लगा कि यह विचार बहुत हद तक हमारी जरूरत को पूरा करता है। यदि समान स्कूल प्रणाली या पड़ोसी स्कूल के विचार का हम पालन करें तो हमारा काम इससे चल जाता है। इसीलिए मैंने कहा कहीं न कहीं इन दोनों में समानता है।

प्रश्न : इसी बात को यदि थोड़ा आगे बढ़ाएं कि आज के समय में शिक्षा व्यवस्था में दो तरह की धाराएं चल रही हैं। एक राजकीय विद्यालयों की धारा है और जिसके बारे में यह कहा जाता है कि आज भी 70 से 80 प्रतिशत बच्चे इन स्कूलों में पढ़ते हैं। लेकिन दूसरी तरफ निजी विद्यालयों का भी एक बड़ा जाल है। निजी स्कूलों के बारे में यह कहा जा सकता है कि वे समावेशी शिक्षा के विचार से उलट में चलने वाले स्कूल हैं और जो कि पूरी तरह बाजार के सिद्धान्त पर काम कर रहे हैं। समावेशी शिक्षा का विचार इस चुनौती का सामना कैसे करेगा ?

उत्तरः देखिए, मेरी मान्यता है और ऐसा लगता है, काफी लोग इस तरह से अब सोचने लगे हैं कि दिसम्बर 2002 में जब से प्रारंभिक शिक्षा मौलिक अधिकार बना है, तब से हमारे देश में निजी स्कूलों की कोई जगह कानूनी रूप से नहीं रही है। इस अधिकार के आते ही निजी स्कूलों का संचालन असंवैधानिक हो गया है। इसकी वजह यह है कि मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा देना सरकार की जिम्मेदारी है। निजी स्कूल मुफ्त शिक्षा नहीं देते हैं। यदि फिर भी कुछ लोग निजी स्कूल चलाना ही चाहते हैं तो उनकी व्यवस्था अलग तरह से हो सकती है लेकिन बच्चों से फीस लेने का उनका अधिकार नहीं है। आपका सवाल था कि शिक्षा में दो तरह की धाराएं चल रही हैं क्योंकि हमारे यहां जो बुद्धिजीवी वर्ग और नीति निर्माता हैं वे अभी शिक्षा के मौलिक अधिकार के महत्त्व को नहीं समझ रहे हैं और चूंकि उनको इस मौलिक अधिकार के होने या नहीं होने से कोई फर्क नहीं पड़ रहा है, क्योंकि उनके बच्चे तो पढ़ ही रहे हैं। यदि यह मौलिक अधिकार बना है तो यह तो गरीब बच्चों के लिए बना है और गरीब लोग अभी तक अपनी आवाज को सामने नहीं ला पाए हैं। हमारे यहां प्रायः यह होता रहा है कि नीतियां या तो लोगों की आवाज से या न्यायालय के दखल से बदलती हैं। नीति निर्माताओं के भी अपने निहित स्वार्थ होते हैं। फिर वे क्यों ऐसी व्यवस्था को बदलना चाहेंगे ! संविधान में बदलाव करने से ही तो वास्तविक बदलाव नहीं होगा। यदि दस नौकरशाहों से पूछा जाए कि अनुच्छेद 21 ए क्या है ? किसी को यह मालूम नहीं है, फिर उसके निहितार्थ और उसको लागू करने की बात तो दूर है। आप मौलिक अधिकारों के बीच श्रेणीबद्धता कायम नहीं कर सकते हैं। आप पुलिस व्यवस्था के निजीकरण की बात नहीं कर सकते। आप न्याय व्यवस्था और रक्षा व्यवस्था के निजीकरण की बात नहीं करते। आप वोट देने को निजीकृत नहीं कर सकते। आप सूचना के अधिकार के निजीकरण की बात नहीं कर सकते कि जो ज्यादा पैसा देगा उसको ज्यादा सूचनाएं दी जाएंगी। लेकिन स्कूलों के निजीकरण की बात यहां की जा रही है। ये हमारे देश में या किसी भी सभ्य समाज में सब व्यक्तिओं के नैसर्गिक अधिकार हैं। शिक्षा को भी इसी तरह के अधिकार का दर्जा मिल गया है। यह बात उन्नीकृष्णन ने कही है। आपको काफी हद तक इसका जबाव यह देना चाहूंगा कि निजी स्कूलों की जो धारा अभी चल रही हैं वह एक जबरदस्ती चलाई गई व्यैक्तिक धाराएं हैं और हमें लगता है यह बंद हो जानी चाहिएं।

प्रश्नः इसी संदर्भ में एक बात यह है और जिसे जयपुर में हमारे एक मित्र ने अध्ययन करके पता लगाया है कि जो जाने-माने स्कूल हैं उनमें अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों को प्रवेश नहीं दिया जाता या बहुत ही कम दिया जाता है और यह सब सोच समझकर किया जा रहा है। उन्होंने अपने अध्ययन में बताया है कि यह सब आरक्षण के मसले पर चल रही बहस की वजह से है। ये स्कूल पहले से ही इन बच्चों को बाहर कर देना चाहते हैं। एक अन्य तथ्य यह भी है कि जाने-माने निजी विद्यालयों में जहां बच्चों का

सालाना खर्चा बहुत ज्यादा होता है वहां लड़कियां कम देखने को मिलती हैं। निजी स्कूलों में ऐसी भी चीजें चल रही हैं। अब सवाल यह है कि राज्य की ओर से इस तरह की चीजों से निपटने के लिए क्या रणनीति होनी चाहिए ?

उत्तरः देखिए, हमारा यह मानना है कि निजी स्कूल इसीलिए चलते हैं क्योंकि या तो वहां सरकारी स्कूल हैं ही नहीं और यदि सरकारी स्कूल हैं भी तो वे ठीक तरह से नहीं चल रहे हैं। जहां-जहां सरकारी स्कूल बढ़िया तरीके से चल रहे हैं वहां निजी स्कूल नहीं खुलते। वे स्वतः ही खत्म हो जाते हैं और यह बात शोधों के माध्यम से भी सामने आ रही है। आपने आज के अखबार में देखा होगा, उसमें हमारे यहां (बिहार) का सर्वे आया है। सर्वे से निकलकर आ रहा है कि हमारे यहां सरकारी स्कूलों की स्थिति में सुधार हो रहा है और अब लोग इसे मानने लगे हैं। हम देख रहे हैं कि जैसे-जैसे सरकारी स्कूलों की स्थिति में सुधार हो रहा है निजी स्कूल धीरे-धीरे कम होते जा रहे हैं। अगर हम संविधान की बात न भी करें तो भी यह कहा जा सकता है कि यदि सरकारी स्कूल ठीक तरह से काम करेंगे तो निजी स्कूल नहीं होंगे। सरकारी स्कूल के लिए तो भेदभाव का कोई मतलब ही नहीं है। आप दिल्ली का उदाहरण ले लीजिए, दिल्ली में सरकारी स्कूल खुल ही नहीं रहे हैं। जो नई- नई कॉलोनियां वहां बन रही हैं वहां सरकारी स्कूल के लिए जगह ही नहीं दी जा रही है। यदि ऐसी कॉलोनियों में सरकारी स्कूल खोल भी देते हैं तो सरकारी स्कूल के शिक्षकों को आप सारे कामों में लगा देते हैं और निजी स्कूल के शिक्षकों को उस तरह के कामों में लगाते ही नहीं हैं क्योंकि आपका बच्चा उसमें पढ़ रहा है। ऐसी स्थिति में सरकारी और निजी स्कूल की तुलना की ही नहीं जा सकती और बच्चों के सीखने में भी फर्क आएगा ही। यह तो एक तरह से वर्ग संघर्ष है। जिस वर्ग से हम अपना तादात्म्य ही महसूस नहीं करते उसके लिए बनने वाली किसी भी चीज में हमारी दिलचस्पी क्यों होगी !

प्रश्नः आपने अपनी पुस्तक की शुरूआत बहुत खूबसूरत तरीके से की है। आपने कहा है, ''क्या विद्यालयों में दीवारें होती हैं?'' फिर आगे है कि, ''ये दीवारें अक्सर अदृश्य होती हैं।'' और आगे आपने कहीं अगले पन्नों में यह कहा है कि, ''आज की किस्म के दीवारों और बाधाओं वाले विद्यालयों में समावेशी शिक्षा का व्यवहार नहीं किया जा सकता।'' क्या समावेशी शिक्षा, मुझे उसको पढ़ते हुए लगा और आपने इवान इलिच को उद्धृत भी किया है, स्कूल भंग करने की तरफ जाने वाला कोई कदम है ?

उत्तरः इसमें हर्ज क्या है ?

प्रश्नः लेकिन स्कूल बंद करने में विश्वास करने वाले तो कहते हैं कि स्कूल सीखने की अच्छी जगह है ही नहीं।

उत्तरः हां, अगर एक स्तर पर जाकर ऐसा हो जाए तो क्या आपत्ति है ? लेकिन स्कूल जब तक एक संस्था के रूप में काम कर रहा है उसको मानते हुए हम समावेशी शिक्षा प्रणाली पर काम कर सकते हैं। लेकिन समावेशी शिक्षा पर काम करते हुए उस क्रम में अगर हम स्कूल बंद करने की ओर जाएं तो मुझे नहीं लगता है कि हम कोई गलती कर रहे हैं।

प्रश्नः यानी आप कह रहे हैं कि यदि स्कूल रहें ही नहीं.......

उत्तरः दो बातें मैंने कहीं, मैं अभी नहीं कह रहा हूं कि स्कूल रहें ही नहीं। अभी स्कूल हैं और हमारे कहने से तो स्कूल खत्म होंगे नहीं। ऐसी कोई नीति भी हमें नजर नहीं आ रही है कि स्कूल खत्म हो जाएं। यदि अभी स्कूल बंद कर दिए जाएं तो ढेर सारे बच्चों का नुकसान होगा। यह वैसा ही होगा जो हाल अनौपचारिक शिक्षा का हो गया क्योंकि वहां भी यही दावा था कि बिना स्कूल के भी बच्चे पढ़ सकते हैं। अभी स्कूल एक संस्थागत स्थिति में रहते हुए भी ठीक तरीके से चल सकते हैं। लेकिन जैसा आपने कहा इवान इलिच या पाउलो फ्रेरे के लेखन को यदि हम पढ़ें तो पाएंगे कि धीरे-धीरे उन्होंने यह इशारा किया है कि स्कूल के संस्थागत अस्तित्व के बिना भी हम शिक्षा दे सकते हैं। हमें लगता है कि उससे हमें बचने की कोशिश करने की जरूरत नहीं है।

प्रश्नः आपने कहा है कि विद्यालयों का अधिगम सिर्फ कक्षाओं तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। उससे आगे बढ़कर समुदायों में पहुंचना चाहिए। यह नजरिया आमतौर पर होता है लेकिन इसके अनुरूप काम नहीं होता। बहुत कम संस्थाएं या लोग हैं जो इस नजरिए से काम करते हैं। इस वजह से इसका कोई मूर्त रूप भी उभरकर नहीं आया है कि समुदाय के संसाधनों का उपयोग शिक्षा में कैसे किया जाए या समुदाय किस रूप में स्कूल से जुड़े ?

उत्तरः इसका मूर्त रूप तो समान स्कूल प्रणाली या पड़ोसी स्कूल की अवधारणा ही है। हम अपने स्कूल से इसलिए नहीं जुड़े हुए हैं क्योंकि हमारे बगल के स्कूलों में हमारा बच्चा पढ़ नहीं रहा है और जहां हमारा बच्चा पढ़ रहा है वहां हम जा ही नहीं सकते हैं। निजी स्कूलों में ये समस्या अधिक है। लेकिन हमारे पड़ोस में यदि कोई स्कूल है और उसके बेहतर स्कूल होने में हमारा किसी भी प्रकार का निहित स्वार्थ है तो निश्चित ही हम उससे जुड़ेंगे और स्कूल भी हमसे अधिक जुड़ेगा। ऐसे ढेर सारे उदाहरण हैं भी जहां स्कूलों में जाकर समुदाय के लोग स्वैच्छिक सेवाएं देते हैं। इसी तरह स्कूल के बच्चे भी समुदाय से जुड़ सकते हैं। यह कोई बहुत बड़ी चीज नहीं है।

प्रश्नः लेकिन इसमें ठोस रूप से और क्या-क्या चीजें हो सकती हैं, जैसे एक बात तो संसाधनों की कही जाती है। दूसरी है कि यदि समुदाय का कोई व्यक्ति किसी भी तरह का हुनर जानता है तो वह

स्कूल में आकर बच्चों को बताए। इस रूप में तो अभी हमारे यहां काम हो नहीं रहा है। यहां तो बच्चे कक्षाओं में बंद रहते हुए सिर्फ शिक्षक को सुनते रहने के लिए ही अभिशप्त रहते हैं।

उत्तरः विदेशों के बारे में हमारा थोड़ा बहुत अनुभव यह है कि मान लीजिए कि एक स्कूल में कम्प्यूटर है लेकिन वहां पर कम्प्यूटर पढ़ाने वाला नहीं है। और यदि कोई अभिभावक कम्प्यूटर जानता है तो वह स्कूल में आकर दो-चार घंटे बच्चों के साथ काम करता है। मान लीजिए की सप्ताह में दो दिन का भी समय दे दिया तो उनका काम चल जाता है। और अभिभावक समय इसलिए भी देते हैं क्योंकि उनके बच्चे वहां पढ़ रहे हैं और इसीलिए उनका स्कूल से लगाव है। यदि उनके बच्चे उस स्कूल में नहीं रहते तो वे वहां कभी नहीं जाते। हम भी हमारे यहां कोशिश कर रहे हैं कि इसी तरह से लोगों को स्कूलों से जोड़ें। हम यहां पुलिसमैन को स्कूलों के साथ जोड़ रहे हैं। इससे उनकी भी दिलचस्पी स्कूल में बनती है। जैसे अब डाकिया के बारे में अगर डाकिया जाकर बताएगा तो यह डाकिया के बारे में लेख पढ़ने या निबंध पढ़ने से ज्यादा बेहतर होगा। ऐसी ही बहुत सारी चीजें जो वैसे भी शिक्षाक्रम का हिस्सा हैं, यदि वे लोग सीधे जाकर स्कूलों में काम करेंगे तो वे भी शिक्षक की हैसियत में आएंगे।

प्रश्नः एक अंतिम सवाल, आप बिहार में समान स्कूल प्रणाली पर काम कर रहे हैं और इसके लिए एक आयोग का भी गठन किया गया है। बिहार की शिक्षा के संदर्भ में आपकी क्या योजना है ?

उत्तरः देखिए, बिहार में मुख्यमंत्री नितीश कुमार जी की सरकार है। वे स्पष्ट रूप से सामाजिक असमानता में विश्वास नहीं करते। वे समरस समाज की बात करते हैं, सही मायने में समावेश की बात करते हैं। मैं यहां और सब चीजों में तो नहीं जाना चाहूंगा पर जहां तक स्कूल का सवाल है तो स्पष्ट रूप से यह मान्यता है कि सभी बच्चों को कम से कम न्यूनतम गुणवत्ता की शिक्षा मिले। उदाहरण के लिए, हमने कहा कि हम पैरा टीचर नहीं रखेंगे, यद्यपि हमारे पास इतने पैसे नहीं हैं जिससे हम काफी वेतन दे सकते हैं लेकिन सभी शिक्षकों को हम एक समान वेतन देंगे। स्कूल में हम सिर्फ कक्षा कक्ष नहीं बनाएंगे जो सर्व शिक्षा अभियान करता है। हम स्कूल में वे सभी सुविधाएं देंगे जो होनी चाहिएं। इन कामों के लिए सरकार ने अपने बजट से पैसा दिया है। शिक्षकों के प्रशिक्षण भी बेहतर किए जाएंगे। इन सब दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुए निश्चित रूप से यहां एक सकारात्मक दृश्य उभर रहा है। स्कूलों के बीच जो ढेर सारी असमानताएं हैं उनको खत्म करने का प्रयास कर रहे हैं। हमने निजी स्कूलों को बंद नहीं किया है लेकिन जैसा कि मैंने बताया कि ये निजी स्कूल सरकारी स्कूलों में कमी के कारण चल रहे थे अब वे स्कूल कम हो रहे हैं। हम 15 साल के बाद पहली बार 15000 नए स्कूल खोल रहे हैं। स्कूलों में भवन निर्माण का काम शुरू हो गया है। यह सब स्वाभाविक रूप से हम लोग कर रहे हैं। दूसरे स्तर पर जैसा आप जानते हैं कि समान स्कूल प्रणाली को लागू करने के लिए, जो आज के दिन भी राष्ट्रीय नीति है, एक आयोग का गठन किया है। यह आयोग यह बताने के लिए नहीं है कि समान स्कूल होना चाहिए या नहीं होना चाहिए। इसके मुद्दे बहुत स्पष्ट हैं। हमारी एक मांग इस आयोग से यह है कि आप हमें वे नियम और मानदण्ड बताईए जो एक स्कूल लिए होने चाहिएं। दूसरा निजी स्कूलों के साथ हम क्या करें ? उनको कैसे नियंत्रित करें ? आजकल हमारे यहां निजी स्कूलों को नियंत्रित करने का कोई कानून नहीं है। उन्हें स्कूल खोलने की अनुमति दें या नहीं। शिक्षा के मौलिक अधिकार को यदि हम लागू करना चाहें तो कैसे लागू करें और उसके लिए कितना खर्चा आएगा और हम उसे कितने दिनों में लागू कर सकते हैं ? यह सरकार स्पष्ट रूप से यह संकेत दे रही कि यदि हम इसे सही मायने में लागू करना चाहें तो क्या करें। हम अभी तक की मुश्किलों से स्पष्ट रूप से आगे बढ़ने की कोशिश कर रहे हैं। अभी हमने पिछले पांच महीनों में 80 हजार शिक्षकों की भर्ती की है जो कि एक रिकॉर्ड है। काफी बड़ी संख्या में बच्चे हमारे स्कूलों से बाहर हैं। उनके लिए शिक्षक की व्यवस्था हम कर रहे हैं। प्रायः बच्चे स्कूलों में आते हैं और नामांकन बढ़ जाता है। उनके लिए शिक्षक चाहिएं और हम शिक्षक उपलब्ध कराने के लिए तैयार हैं। सरकार नीतिगत रूप से इन मुद्दों को हल करने के लिए तैयार है। यह सब हम सीमित स्रोतों से कर रहे हैं। लोग हमें कभी-कभी यह कहते हैं कि साहब, आप वेतन कम दे रहे हैं। कम वेतन देने के कई कारण हैं। एक तो बाजार का कारण है कि, अन्य स्कूलों या निजी स्कूलों में जितना वेतन है हम उतना देने की कोशिश कर रहे हैं। दूसरा है कि हम स्थानीय शिक्षक दे रहे हैं। अधिक वेतन देने से ऐसे लोग शिक्षक के तौर पर आ जाते हैं जिनकी दिलचस्पी उस समुदाय की पढ़ाई में नहीं है। और तीसरा लेकिन यही अंतिम नहीं, कि जिन स्रोतों से हमें काम करने के लिए पैसा मिल रहा है यदि वहां से पैसा ज्यादा मिलने लगेगा तो हम भी पैसा बढ़ा देंगे। कल को भारत सरकार शिक्षा पर सकल घरेलू आय का प्रतिशत बढ़ा दे तो हम भी शिक्षा के विभिन्न मदों पर पैसा बढ़ा देंगे। शिक्षा की स्थितियों में सही मायने में सुधार हो इसके लिए हम प्रयास कर रहे हैं। ◆